International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

आदिवासी साहित्य में सामाजिक चेतना

Vikram Singh Baraith

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर

शोध आलेख-"नीति काव्य का सिरमौर: रजिया रा दूहा" सत्र में प्रकाशन हेतु

सार: आदिवासी साहित्य की प्रवृत्ति में प्रकृति, जंगल, पहाड़, नदी और पेड़ प्रमुख रूप से आते हैं। विस्थापन और अस्मिता का सवाल उनकी मुख्य समस्याएँ और आसन्न संकट हैं। मुख्यधारा से मुठभेड़ और संघर्ष की चेतना का भाव प्रबल रूप से इन रचनाओं में देखा जा सकता है। अपने समुदाय की पहचान की समस्या रचनाकारों में हमेशा से रही है।

I. परिचय

भारत में आदिवासी जीवन को समझने, उनकी समस्याओं और उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने में आदिवासी साहित्य एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। आज देश के तमाम शीर्ष विश्वविद्यालयों में शोधार्थी आदिवासी विमर्श पर शोध कार्यों में जुटे हुए हैं ताकि उनके जीवन, संस्कृति, समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया जा सके। साहित्य से समाज का नव सृजन होता है। समाज को एक नयी दशा के साथ ही दिशा भी दिखाता है या यूँ कहें, कि साहित्य समाज में एक दर्पण की तरह कार्य करता है। भारत में जब बीसवीं सदी अपने अंतिम वर्षों को जी रही थी, तब अनेकों सामाजिक और साहित्यिक आंदोलनों का भी जन्म हो रहा था। इस दौरान स्त्रियों, दलितों, जनजातीय समुदायों और आदिवासियों ने एकजुट होकर अपनी आवाज़ मुखर की। इसके लिए उन्होनें राजनीतिक, सामाजिक आंदोलनों के साथ-साथ, साहित्यिक अभियान भी शुरू किया। देश आज़ाद होने के बाद दलित और स्त्री अस्मितावादी विमर्शों के पश्चात आदिवासी विमर्श सबसे नया विमर्श बना। हालाँकि, आदिवासी साहित्य की अवधारणा अभी भी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई है, क्योंकि इसकी प्रस्थापनाएँ अभी तक विमर्श के दौर से ही गुज़र रही हैं। आदिवासी साहित्य को सही से समझने के लिए सबसे जरूरी होता है, उनकी वाचिक परंपरा यानी मौखिक साहित्य को समझना। आदिवासियों की वाचिक परंपरा अत्यंत समृद्ध है।[1,2,3]

आदिवासी साहित्य, आदिवासियों और गैर-आदिवासियों लेखकों के द्वारा लिखा जा रहा है। जिसमें आदिवासी दर्शन, संस्कृति, प्रकृति, जीवन-शैली और उनकी विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है। वहीं, कई लेखकों का मत है कि, स्वयं आदिवासियों के द्वारा लिखा हुआ साहित्य ही मूलभूत साहित्य है, क्योंकि उसमें उनके द्वारा भोगी हुई सच्ची घटनाएँ दर्ज़ होती हैं। हरिराम मीणा, रामशरण जोशी, मधु कांकरिया, मिथिलेश प्रियदर्शी, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, रोज केरकेट्ट आदि अनेक लेखकों ने आदिवासी साहित्यिक लेखन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आगे पेश है, आदिवासी साहित्य की कुछ ख़ास किताबे, जिनको पढ़े बिना आप मूल आदिवासी चेतना को नहीं समझ सकते हैं।

'एलिस इक्का की कहानियाँ' वर्ष 2015 में प्रकाशित हुई थी। इसमें एलिस इक्का द्वारा वर्ष 1950 से 1960 में लिखी गई छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह है। कहानियों का मुख्य केंद्र महिलाएँ और प्रकृति हैं। अर्थात कहानियाँ उन आदिवासी महिलाओं की, जो प्रकृति के बेहद पास रहती हैं। एलिस इक्का मुंडा ट्राइब से आने वाली भारत की पहली महिला कहानीकार है। उनकी कहानियाँ इतनी प्राकृतिक और सरल हैं कि कोई भी इन्हें पढ़कर खुद को प्रकृति से जोड़ लेता है।

वर्ष 2019 में आई छोटी-सी 'कवि मन जनी मन' किताब में लेखिका वंदना टेटे ने आदिवासियों की कविताओं और लोक गीतों को जगह दी है। इस किताब को आदिवासी मौखिक साहित्य का ख़जाना कह सकते है। इसमे वंदना टेटे ने "ओरेचर" परंपरा यानी मौखिक लिटरेचर का निर्वहन किया है, जिसमें आदिवासियों की कविताओं, कहानियों और लोक-गीतों को बड़े ही सुन्दर तरीके से साहित्य का रूप दिया गया है। 'पुरखा लड़ाके', 'झारखंड : एक अंतहीन समरगाथा', 'किसका राज है', "पुरखा झारखंडी साहित्यकार" और 'नये साक्षात्कार', इनकी अन्य प्रमुख कृतियाँ हैं।

इसके अलावा, बदलते समय में बेहद ज़रूरी है, 'द ब्लैक हिल' किताब पढ़ना। वर्ष 2014 में प्रकाशित किताब आज़ादी से पहले उत्तर-पूर्व क्षेत्र की कहानी बताती है। किताब की लेखिका ममांग दई, एक प्रसिद्ध आदिवासी पत्रकार और कवयित्री है। यह किताब काल्पनिक लेखन है, लेकिन ये असल घटनाओं पर आधारित है, जो आज के वर्तमान हालातों पर भी सोचने को मजबूर करती है। इसे वर्ष 2017 में साहित्य अकादमी अवॉर्ड से नवाज़ा गया है।

वर्तमान में आदिवासी चेतनायुक्त आदिवासी साहित्य धीरे-धीरे हिंदी और अन्य भाषाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा चुका है। आदिवासी साहित्य हिंदी भाषा के अलावा लगभग सैंकड़ो आदिवासी भाषाओं में अपनी पहचान बना रहा है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

II. विचार-विमर्श

विश्व भर में आदिवासी, आदिवासी साहित्य और आदिवासीयत की चर्चा होती है। आदिवासी साहित्य अर्थात वह साहित्य जिसमें आदिवासियों का जीवन, समाज और दर्शन अभिव्यक्त हो। आदिवासी साहित्य तीन प्रकार का है- (1) आदिवासी विषय पर गैर-आदिवासी लेखकों द्वारा लिखित साहित्य, (2) आदिवासी रचनाकारों द्वारा स्वयं लिखा गया साहित्य और (3) 'आदिवासी' अर्थात आदिवासी दर्शन को व्यक्ति करने वाला साहित्य। विभिन्न देशों में अलग-अलग नाम से पुकारा जाने वाला आदिवासी साहित्य आज अत्यंत प्रासंगिक है। यह विदेशी लेखक का ध्यान आकर्षित करने में सफल हो रहा है, उसे मान्यता मिल रही है जो बड़ी बात है। अब पूरा संसार आदिवासियों के विचारों को, उनकी जीवन शैली कोडी चाहता है।

वास्तव में आदिवासी, आदिवासी और उनके साहित्य के प्रति लेखक, पाठक, दर्शकों में आदर भाव बढ़ता है। यह बदलाव न एक दिन में आया, न ही यह क्षणिक तड़ित कौंध है। आदिवासियों [4,5,6]से आदिवासी लोकगीतों, लोककथाओं के मौखिक रूप की प्रत्येक और उनसे गतिविधि एक मुख्य कारण है। आदिम जाति के जीवन-संघर्ष, स्वतंत्रता आंदोलन में विद्रोह और बलिदान, उनका शोषण, हँसी-खुशी, उनकी संस्कृति-संस्कृति पर काफी वाचिक साहित्य उपलब्ध है।

आदिवासी बहुल झारखंड के कई प्रांतों में आदिवासी हैं और सभी की अपनी-अपनी विशिष्टताएं हैं। इनकी शैलियों में मानवीय जीवन के ही लोकरंग नहीं हैं, बल्कि बेजुबान, मासूम बीमारियों के अलावा हिंसक जानवरों के साथ मानव के संबंध को भी स्वर मिला है। और पर्यावरण आदिवासी लोकगीतों, लोककथाओं में बड़ी गहराई से गुंथे हुए हैं। अभी भी अमेरिका के रेड इंडियन, लैटिन अमेरिका के इंडीजीनस, अफ्रीका के सस्ते, ग्रीनलैंड के इन्युट, कनाडा, न्यूजीलैण्ड, वैश्विक या भारत के आदि जन सभी प्रकृति की रक्षा की चुनौती अपने पुरखों के साहित्य को बचाने के प्रति साहित्यकार भी सजग हैं। 'रमणिका फाउंडेशन' ने अनेक आदिवासियों सहित इसे सहेजने का संकल्प लिया है, हालांकि इन प्रयासों को और धार देने की आवश्यकता है।

आदिवासी लेखक आज अपने शोषण, उत्पीड़न, अभाव, पलायन, दुरंगे भाव-व्यवहार के प्रति तो सजग हैं ही, वे अपनी आदिवासी सोच और सांस्कृतिक अस्मिता पर फख्र भी करते हैं। इन दिनों जब आदिवासी लेखक अनेक विधानों में निरंतर रचनाकार हैं, आदिवासी साहित्य के नवीनतम रुझानों की तह तक जाने की जरूरत है। ऐसे में कुछ प्रश्न उत्थान प्रकृति के हैं। वैश्विक स्तर पर भी कई प्रश्न हैं।

कई आदिवासी लेखक अब वैश्विक चुनौतियों से जूझ रहे हैं और साथ ही कई विधानों में अभी भी उनकी हालत निराशाजनक है। इस बिंदु पर भी विचार की जरूरत है।

यह चुनौतीपूर्ण है कि अभी काफी आदिवासी विकास की अवधारणा को अपना नहीं पाया है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। वे नए विकासों से जुड़ नहीं पाए हैं। इस तरह आदिवासी साहित्य पर चर्चा में 'विकास' से संबंध एक बड़ा मुद्दा है। पिछले दो दशकों में आदिवासी जीवन और साहित्य में आने का रेखांकन भी जरूरी है, क्योंकि आधुनिकता का तकाजा बढ़ने लगा है। इन संदर्भों में यहां एक परिचर्चा प्रस्तुत है, जिस पर बहस आगे बढ़नी चाहिए।

1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है

20वीं सदी के आखिरी दशकों में भारत में नए सामाजिक आंदोलनों का उभार हुआ। स्त्रियों, किसानों, दलितों, आदिवासियों और जातीयताओं की 'नई'एकजुटता ने ऐसी मांगें और मुद्दे उठाए जो स्थापित सैद्धांतिक व राजनीतिक मुहावरों के माध्यम से आसानी से समझे और सुलझाए नहीं जा सकते थे। इन अस्मिताओं ने अपने साथ होने वाले शोषण के लिए अपनी खास अस्मिता को कारण बताया और उस शोषण तथा भेदभाव से संघर्ष के लिए उस संबंधित अस्मिता/पहचान को धारण करने वाले समूह/समुदाय को अपने साथ लेकर अपनी मुक्ति के लिए सामूहिक अभियान चलाया। चूंकि इस प्रक्रिया में शोषण और संघर्ष का आधार अस्मिताएं हैं, इसलिए इसे अस्मितावाद की संज्ञा दी गई। वंचितों के शोषण के खिलाफ उठ खड़ी हुई मुहिम में सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन के अलावा साहित्यिक आंदोलन ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य उसी का प्रतिफल है। अब आदिवासी चेतना से लैस आदिवासी साहित्य भी साहित्य और आलोचना की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है।

आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला-माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था लेकिन वहां साहित्य सृजन की परंपरा मूलत: मौखिक रही। जंगलों में खदेड़ दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को अनवरत जारी रखा। ठेठ जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी की वजह से यह साहित्य आदिवासी समाज की ही तरह उपेक्षा का शिकार हुआ। आज भी सैकड़ों देशज भाषाओं में आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है, जिसमें से अधिकांश से हमारा संवाद शेष है।[7,8,9]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

समकालीन आदिवासी साहित्य आंदोलन के ऐतिहासिक-भौतिक कारण हैं। दो दशक पूर्व भारत की केंद्रीय सरकार द्वारा शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ने बाजारवाद का रास्ता खोला। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लूट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दांव पर लगाकर खेला जा रहा है। आंकड़े गवाह हैं कि पिछले एक दशक में अकेले झारखंड राज्य से 10 लाख से अधिक आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश लोग दिल्ली जैसे महानगरों में घरेलू नौकर या दिहाड़ी पर काम करते हैं। विडंबना यह है कि सरकार के अनुसार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में मूलत: कोई आदिवासी नहीं है, इसलिए यहां की शिक्षण संस्थाओं और नौकरियों में आदिवासियों के लिए आरक्षण या कोई विशेष प्रावधान नहीं है। विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों से बेदखल किए गए ये लोग जाएं तो कहां जाएं ? यह दुखद है कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1993 को 'देशज लोगों का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष'के रूप में मनाने का फैसला किया तो भारत सरकार की प्रतिक्रिया थी- 'संयुक्त राष्ट्र द्वारा परिभाषित इंडिजिनस लोग भारतीय आदिवासी या अनुसूचित जनजातियां नहीं हैं, बल्कि भारत के सभी लोग देशज लोग हैं और न यहां के आदिवासी या अनुसूचित जनजाति किसी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक पक्षपात के शिकार हो रहे हैं।'दरअसल पूरा मसला आदिवासियों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने का था, जिसकी मांग आदिवासी साहित्य में भी देखी जा सकती है। अपने जल-जंगल-जमीन से बेदखल महानगरों में शोषित-उपेक्षित आदिवासी किस आधार पर इसे अपना देश कहें ? बाजार और सत्ता के गठजोड़ ने आदिवासियों के सामने अस्तित्व की चुनौती खड़ी कर दी है। जो लोग आदिवासी इलाकों में बच गए, वे सरकार और उग्र वामपंथ की दोहरी हिंसा में फंसे हैं। अन्यत्र बसे आदिवासियों की स्थिति बिना जड़ के पेड़ जैसी हो गई है। नदियों, पहाड़ों, जंगलों, आदिवासी पड़ोस के बिना उनकी भाषा और संस्कृति तथा उससे निर्मित होने वाली पहचान ही कहीं खोती जा रही है। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व का इतना गहरा संकट इससे पहले नहीं पैदा हुआ। जब सवाल अस्तित्व का हो तो उसका प्रतिरोध भी स्वाभाविक है। सामाजिक व राजनीतिक प्रतिरोध के अलावा कला और साहित्य द्वारा भी इसका प्रतिरोध किया गया और उसी से समकालीन आदिवासी साहित्य अस्तित्व में आया।

जब-जब दिकुओं ने आदिवासी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप किया, आदिवासियों ने उसका प्रतिरोध किया है। पिछली दो सदियां आदिवासी विद्रोहों की गवाह रही हैं। इन विद्रोहों से रचनात्मक ऊर्जा भी निकली, लेकिन वह मौखिक ही अधिक रही। संचार माध्यमों के अभाव में वह राष्ट्रीय रूप नहीं धारण कर सकी। समय-समय पर गैर-आदिवासी रचनाकारों ने भी आदिवासी जीवन और समाज को अभिव्यक्त किया। साहित्य में आदिवासी जीवन की प्रस्तुति की इस पूरी परंपरा को हम समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के तौर पर रख सकते हैं। जाहिर है कोई भी साहित्यिक आंदोलन किसी तिथि विशेष से अचानक शुरू नहीं हो जाता। उसके उद्भव और विकास में तमाम परिस्थितियां अपनी भूमिका निभाती हैं। समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरुआत हमें 1991 के बाद से माननी चाहिए। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण-उत्पीडऩ की प्रक्रिया तेज की, इसलिए उसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ। शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था, इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था। निष्कर्षत: 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

इसमें आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकार बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। इस साहित्य का भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ शेष साहित्य से उसी तरह पृथक है जैसे स्वयं आदिवासी समाज, और यही पार्थक्य इसकी मुख्य विशेषता है। यह आदिवासी साहित्य की अवधारणा के निर्माण का दौर है। आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के संकटों और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय'के अधिकार के साथ खड़ी होती है। [10,11]हालांकि यह समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का आरंभिक दौर है लेकिन इसके बावजूद यह सुखद है कि इसमें अभी तक 'स्वानुभूति बनाम सहानुभूति'जैसी गैरजरूरी बहसें केन्द्र से दूर परिधि के इर्द-गिर्द ही घूम रही हैं। आखिर स्वानुभूति या अनुभूति की प्रामाणिकता को केंद्रीय महत्व मिले भी क्यों ? निश्चय ही अनुभूति की प्रामाणिकता की जगह अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता अधिक महत्वपूर्ण है और होनी भी चाहिए। यह सच है कि लंबे अनुभव, निकट संपर्क और संवेदनशीलता के बिना प्रामाणिक अभिव्यक्ति संभव नहीं है, खासकर आदिवासी संदर्भ में, लेकिन इसके बावजूद स्वानुभूति को एकमात्र आधार नहीं बनाया जा सकता।

चूकि आदिवासी साहित्य विमर्श अभी निर्माण-प्रक्रिया में है, इसलिए अभी इसके मुद्दे भी आकार ले रहे हैं। 'आदिवासी कौन है'से शुरू होकर आदिवासी समाज, इतिहास, संस्कृति, भाषा आदि पर पिछले एक दशक में कुछ बातें हुई हैं। हर साहित्यिक आंदोलन की शुरुआत और उसे आगे बढाने में एक या अधिक पत्रिकाओं की भूमिका होती है। साहित्य जगत में आदिवासी मुद्दों को उठाने, उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में इन पत्रिकाओं ने अहम योगदान दिया है-'युद्धरत आम आदमी' (दिल्ली, हजारीबाग. संपादक- रमणिका गुप्ता), 'अरावली उद्घोष' (उदयपुर, संपादक- बीपी वर्मा 'पथिक'), 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' (रांची, संपादक- वंदना टेटे), 'आदिवासी सत्ता' (दुर्ग, छत्तीसगढ. संपादक-केआर शाह) आदि। इनके अलावा 'तरंग भारती'के माध्यम से पुष्पा टेटे, 'देशज स्वर'के माध्यम से सुनील मिंज और सांध्य दैनिक 'झारखंड न्यूज लाइन'के माध्यम से शिशिर टुडु आदिवासी विमर्श को बढ़ाने में लगे हैं। बड़ी संख्या में मुख्यधारा की पत्रिकाओं ने आदिवासी विशेषांक निकालकर आदिवासी विमर्श को आगे बढाने में मदद की है, जैसे- 'समकालीन जनमत' (2003), 'दस्तक' (2004), 'कथाक्रम'(2012), 'इस्पातिका' (2012) आदि। शुरू में हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं ने आदिवासी मुद्दों को छापने में उतनी रुचि नहीं दिखाई लेकिन अब विमर्श की बढ़ती स्वीकारोक्ति के साथ ही इन पत्रिकाओं में आदिवासी जीवन को जगह मिलने लगी है। छोटी पत्रिकाओं में आदिवासी लेखकों को पर्याप्त जगह मिल रही है।

आदिवासी लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखन है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक-सभी प्रमुख विधाओं में आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है। आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है। आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका, क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म'से अधिक समूह में विश्वास करता है। अधिकांश आदिवासी समुदायों में काफी बाद तक भी निजी और निजता की धारणाएं घर नहीं कर पाईं। परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और उसका प्रतिरोध-सब कुछ सामूहिक है। समूह की बात आत्मकथा में नहीं, जनकविता में ज्यादा अच्छे से व्यक्त हो सकती है। आदिवासी कलम की धार तेजी से अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर रही है। आजादी से पहले आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस-प्रशासन की ज्यादतियां आदि हैं जबकि आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है। अगर वे पहचान बचाते हैं तो अस्तित्व पर संकट खड़ा होता है और अगर अस्तित्व बचाते हैं तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट होती है, इसलिए आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। चूंकि आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी विद्रोहों की परंपरा से लेता है, इसलिए उन आंदोलनों की भाषा और भूगोल भी महत्वपूर्ण रहा है। आदिवासी रचनाकारों का मूल साहित्य उनकी इन्हीं भाषाओं में है। हिंदी में मौजूद साहित्य देशज भाषाओं में उपस्थित साहित्य की इसी समृद्ध परंपरा से प्रभावित है। कुछ साहित्य का अनुवाद और रूपांतरण भी हुआ है। भारत की तमाम आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिंदी, बांग्ला, तमिल जैसी बड़ी भाषाओं में अनुदित और रूपांतरित होकर एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है। प्रकारांतर से पूरा आदिवासी साहित्य बिरसा, सीदो-कानू और तमाम क्रांतिकारी आदिवासियों और उनके आंदोलनों से विद्रोही चेतना का तेवर लेकर आगे बढ़ रहा है।[9,10,11]

III. परिणाम

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर अकादमिक जगत में भ्रम की स्थिति है। आदिवासी साहित्य के नाम पर किए जा रहे शोधों में काफी हिस्सा ऐसा है जिनका आदिवासी समाज और साहित्य से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं बनता। आदिवासी साहित्य के नाम पर मुख्यतः तीन तरह का साहित्य हमारे सामने है –

- आदिवासियों के बारे में लिखा गया साहित्य।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

- आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य और
- आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य।

आदिवासियों के बारे में लिखे गए साहित्य का आदिवासी साहित्य के रूप में दावा करना सहज है। इसीलिए शोधार्थी अक्सर रेणु के मैला आँचल (सन् 1953) के संथाल प्रसंग या योगेन्द्रनाथ सिन्हा के वनलक्ष्मी (सन् 1956) से आदिवासी साहित्य की शुरुआत मान लेते हैं। कुछ लोग तुलसीदास की रामचरितमानस में आए वन के प्रसंगों को आदिवासी साहित्य मान लेते हैं और इसी दृष्टि से विश्लेषण करने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि जहाँ भी वन, जंगल या किसी आदिवासी समुदाय का जिक्र आ जाता है, उसे ही आदिवासी साहित्य मान लिया जाता है। बीसवीं सदी के आखिरी दशक में प्रमुखता से उभरे आदिवासी साहित्य के आन्दोलन के बारे में इस कारण भ्रम का निर्माण होता जाता है। आदिवासी चिन्तक हिन्दी साहित्य में आए वन या आदिवासी प्रसंगों को आदिवासी साहित्य मानने से इनकार करते हैं। उनके अनुसार आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। यह विचार स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य के प्रभाव में निर्मित हुआ है। जाहिर है कि इस तर्क की अपनी सीमाएँ हैं। अनुभूति की प्रामाणिकता किसी साहित्य का एक मात्र आधार नहीं हो सकता। आज जब आदिवासी समाज गहरे सांस्कृतिक हमलों से गुजर रहा है, ऐसे में आदिवासी समाज का सच लिखने के लिए केवल किसी आदिवासी समुदाय में पैदा हो जाना काफी नहीं है। आदिवासी समुदायों का बड़ी संख्या में हिन्दूकरण और ईसाईकरण हुआ है। इससे उनकी मौलिक समझ और दर्शन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इस प्रक्रिया में आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीसरा विचार सामने आया है कि आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य माना जाए। जाहिर है कि आदिवासी दर्शन ही वह तत्त्व है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष समाज और साहित्य से अलग करता है। यह आदिवासी जीवन का मूल है, इसलिए जहाँ आदिवासी दर्शन आदिवासी साहित्य की मूल शर्त है, वहीं इसे बचाना आदिवासी साहित्य आंदोलन का मुख्य ध्येय है। निष्कर्षतः आदिवासी साहित्य आदिवासी दर्शन पर आधारित साहित्यिक आन्दोलन है जो आदिवासी परम्परा से अपने तत्त्व लेता है और 21वीं सदी के पहले दशक में अकादमिक जगत में अपना अलग साहित्यिक आन्दोलन होने का दावा प्रस्तुत किया। समकालीन आदिवासी लेखन की शुरुआत हम उदारवाद, बाजारवाद और भूमण्डलीकरण के उभार से मान सकते हैं। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण-उत्पीड़न की प्रक्रिया तेज की, इसलिए इसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ। शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था, इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा का नाम ही समकालीन आदिवासी साहित्य आन्दोलन है। "आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकटों और उनके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है।" (आदिवासी साहित्य विमर्श, सं. गंगा सहाय मीणा, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9)

आदिवासी साहित्य की परम्परा की पड़ताल करने के लिए आदिवासी साहित्य के स्रोतों का अध्ययन जरूरी है। हमारी परम्परागत समझ यह है कि किसी महानगर के किसी वर्चस्वशाली भाषा के ज्ञात प्रकाशक के यहाँ से मुद्रित-प्रकाशित, पुरस्कृत, प्रशंसित, पाठ्यक्रम में शामिल हो चुकी किताब ही श्रेष्ठ साहित्य है। साहित्य की किताबें अक्सर इसी प्रक्रिया में चर्चित हुआ करती हैं। आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर विचार करते समय इस परिपाटी से अलग हटकर विचार करना होगा। आदिवासी साहित्य के विशेषज्ञों का मत है कि आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य और मौखिक परम्परा आदिवासी साहित्य का मूल स्रोत है। सिर्फ हिन्दी में लिखित-मुद्रित आदिवासी सम्बन्धी लेखन को आदिवासी साहित्य कहना उचित नहीं है। आदिवासी लेखकों का आग्रह है कि आदिवासियों का ज्यादातर लेखन उनकी अपनी भाषा में हुआ है। हिन्दी भाषी प्रान्तों में निवास करने के बावजूद आदिवासियों की अपनी भाषाएँ हैं। उनका कभी-कभी हिन्दी में अनुवाद भी होता है। लेकिन मूलतः वे अपनी भाषाओं में सहजता से अभिव्यक्ति पाते हैं। मौखिक साहित्य इसका मूलाधार है। आदिवासी साहित्य की परम्परा को तीन भागों में बाँटकर समझा जा सकता है –

1. पुरखा साहित्य
2. आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परम्परा
3. समकालीन हिन्दी आदिवासी लेखन[10]

पुरखा साहित्य

आदिवासी दर्शन व साहित्य का मूलाधार पुरखा साहित्य है। पुरखा साहित्य आदिवासी समाज में हजारों वर्षों से जारी मौखिक साहित्य की परम्परा है। बीसवी सदी में इसके संकलन, सम्पादन और प्रकाशन के कार्य हुए हैं। आदिवासी चिन्तक इस मौखिक परम्परा को मौखिक साहित्य या लोक-साहित्य कहने के बजाय पुरखा साहित्य कहते हैं। इसके पीछे तर्क है। पहली बात तो यह कि मौखिक साहित्य कहने से कुछ पता नहीं चलता कि किसका मौखिक साहित्य, कैसा मौखिक साहित्य? दुनिया के तमाम समाजों में लिखित से पहले मौखिक साहित्य की परम्परा रही है। उससे अलगाने के लिए आदिवासी चिन्तक आदिवासी मौखिक परम्परा को पुरखा साहित्य कहते हैं। इस प्रक्रिया में वे इसे लोक साहित्य से भी अलग बताते हैं। इस सन्दर्भ में आदिवासी चिन्तक वन्दना टेटे लिखती हैं कि "चूँकि आदिवासी समाज में बाहरी समाज की तरह लोक और शास्त्र का भेद नहीं है, इसलिए साहित्य को

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

भी नहीं बाँटा जा सकता। चूँकि आदिवासी समाज और संस्कृति में पुरखों का बहुत महत्त्व है और मौखिक परम्परा में मिलने वाले गीत, कथाएँ आदि भी पुरखों ने ही रची हैं, इसलिए इस मौखिक परम्परा को सम्मिलित रूप में पुरखा साहित्य कहना चाहिए।" (आदिवासी साहित्य : परम्परा और प्रयोजन, वन्दना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, राँची, 2014)

तमाम आदिवासी भाषाओं में पुरखा साहित्य की समृद्ध परम्परा मौजूद है। इसी के माध्यम से हम उनके जीवन-दर्शन, ज्ञान परम्परा, मूल्यों-विश्वासों आदि को जान सकते हैं। इसलिए आदिवासी जीवन को जानने के लिए पुरखा साहित्य को संकलित करना और सहेजना बहुत जरूरी है। इस दिशा में अध्येताओं ने थोड़ा बहुत कार्य किया है, लेकिन काफी काम किया जाना बाकी है। देश में 300 से अधिक आदिवासी भाषाओं में पुरखा साहित्य की परम्परा बिखरी पड़ी है। इसके संकलन और सम्पादन में बहुत सावधानी की जरूरत है। अक्सर हम अपने पूर्वाग्रहों के साथ संकलन शुरू करते हैं और हमारे पूर्वाग्रह पाठ संशोधन के बीच में घुस जाते हैं। संकलन के लिए आदिवासी दर्शन और सम्बन्धित भाषा का ज्ञान जरूरी है।

उपलब्ध पुरखा साहित्य की कुछ विशेषताएँ हैं – पुरखों के प्रति कृतज्ञता का भाव, प्रकृति और प्रेम के प्रति गहरी संवेदनशीलता, बाहरी समाज के हमलों के प्रति सजगता, अपनी परम्परा और संस्कृति को बचाने का भाव आदि। आदिवासियों पर बाहरी समाजों के हमलों का इतिहास काफी पुराना है और उतनी ही पुरानी है उसके प्रति आदिवासी पुरखों की सजगता। उदाहरण स्वरूप एक गीत द्रष्टव्य है –

"रास्ते में एक जोड़ा जो लूदम फूल है
उस फूल को ऐ बेटी, किसने तोड़ लिया?
रास्ते में अटल फूल की जो कतार है
हे बेटी, किसने छिनगा लिया?
चमचमाते हुए शिकारी
शिकारियों ने फूल तोड़ लिया
झलकते हुए अहेरी
अहेरियों ने डाल को छिनगा दिया
शिकारियों ने जो फूल को तोड़ा
हे बेटी, चोटी से ही तोड़ लिया।
अहेरियों ने जो डाल को छिनगा दिया
सो हे बेटी, नीचे से ही छिनगा दिया!
शिकारियों ने जो फूल को तोड़ा
हे बेटी, उसकी फुनगी मुरझा गई
अहेरियों ने जो छिनगा दिया,
हे बेटी, उसका तना कुम्हला गया! "
(बाँसरी बज रही है मुण्डारी गीतों का संकलन, जगदीश त्रिगुणायत)

उपर्युक्त गीत एक मुण्डारी पुरखा गीत का हिन्दी अनुवाद है। तमाम आदिवासी भाषाओं में इस तरह की सामग्री बिखरी पड़ी है। जरूरत है उसके प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करने और उसे सहेजने की ताकि लोग आदिवासी दर्शन और साहित्य की सही परम्परा से वाकिफ हो सकें।

आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य की परम्परा

लगभग डेढ़ सौ साल पहले आदिवासी भाषाओं में लिपियाँ विकसित होने लगीं। अब तक एक दर्जन से अधिक आदिवासी भाषाओं की लिपियाँ तैयार हो चुकी हैं। कई आदिवासी भाषाओं ने पड़ोस की किसी बड़ी भाषा की लिपि स्वीकार ली है। निष्कर्षतः आदिवासी भाषाओं में लेखन और मुद्रण की परम्परा भी सौ साल से अधिक पुरानी है। इस परम्परा की और पड़ताल किए जाने की जरूरत है। मौजूदा स्रोत सामग्री के अनुसार मतुराअ कहनि नामक मुण्डारी उपन्यास पहला आदिवासी उपन्यास है। यह बीसवी सदी के दूसरे दशक में लिखा गया। इसके एक भाग का अनुवाद हिन्दी में चलो चाय बागान शीर्षक से किया गया।

आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य का महत्त्व यह है कि इसमें विधाएँ भले ही बाहरी समाजों और भाषाओं से ली गई हैं, लेकिन चूँकि रचनाकार अपनी मातृभाषा में लिख रहा है, इसलिए अभिव्यक्त विचार और दर्शन में मौलिकता बनी रहती है। पूर्वोत्तर की खासी, गारो आदि भाषाओं में शौर्यगाथाओं की लम्बी परम्परा है। धीरे-धीरे हिन्दी आदि अन्य भाषाओं में भी इनके अनुवाद होने लगे हैं। ढेरो आदिवासी भाषाओं के लेखन में गए बिना सिर्फ गैर-आदिवासी भाषाओं में प्राप्त सामग्री के आधार पर आदिवासी साहित्य के बारे में बनाई गई राय अधूरी और भ्रामक होगी। आदिवासी भाषाओं में हर साल सैकड़ो किताबें प्रकाशित हो रही हैं। हालाँकि स्पष्ट समझदारी के अभाव में कहीं उसे आदिवासी लोक साहित्य कहा जा रहा है, तो कहीं लोक कथाएँ।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

समकालीन हिन्दी आदिवासी लेखन

बाहरी समाज और साहित्य विमर्श को प्रभावित करने की दृष्टि से आदिवासी साहित्य की परम्परा का सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ाव समकालीन आदिवासी लेखन है। यह साहित्य इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें आदिवासी लेखन बाहरी प्रभाव में हिन्दी आदि गैर-आदिवासी भाषाओं और विधाओं में लिखा गया है। यह मुख्यतः गैर-आदिवासियों की शर्तों पर उनके अनुसार लिखने की कोशिश है। इसमें चुनौती यह है कि आदिवासी लेखकों ने अपनी मौलिकता, अपने विचार और दर्शन को किस हद बचाए रखा है!

आदिवासी कविता लेखन की परम्परा

आदिवासी साहित्य में कविता की परम्परा बहुत पुरानी और सबसे लोकप्रिय विधा है। यह दलित साहित्य से बिल्कुल अलग है। दलित साहित्य में व्यक्ति या आत्म पर जोर है, इसलिए आत्मकथात्मक लेखन प्रमुख है। किन्तु आदिवासी दर्शन में व्यक्ति या आत्म के बजाय सामूहिकता और सामाजिकता महत्त्वपूर्ण है, जिसे अभिव्यक्त करने का सबसे सशक्त माध्यम कविता हो सकती है। इसकी पृष्ठभूमि में मौखिक या पुरखा साहित्य को रखा जा सकता है। फादर हाफमेन, जगदीश त्रिगुणायत आदि विद्वानों द्वारा पुरखा साहित्य के जो संकलन तैयार किए गए हैं, उससे स्पष्ट हो जाता है कि कविता आदिवासी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है।

हिन्दी की पहली आदिवासी कवयित्री सुशीला सामद हैं। सन् 1930-40 के दशक में उनके दो कविता संग्रह प्रकाशित हुए। सन् 1966 में प्रकाशित दुलायचन्द्र मुण्डा का नव पल्लव नाम से कविता संग्रह मिलता है। नब्बे के दशक में बलदेव मुण्डा और रामदयाल मुण्डा कविता के क्षेत्र में सक्रिय थे। बलदेव मुण्डा का सपनों की दुनिया सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। रामदयाल मुण्डा के संग्रह हैं – वापसी, पुनर्मिलन तथा अन्य नगीत तथा नदी और उसके सम्बन्धी तथा अन्य नवगीत। इन रचनाकारों ने कविता के क्षेत्र में एक नई शुरुआत की और समकालीन आदिवासी कविता की नींव रखी, लेकिन छोटे प्रकाशनों से प्रकाशित होने की वजह से ये रचनाएँ हिन्दी के पाठकों के बीच अपनी जगह नहीं बना पाई।

सन्ताली कवयित्री निर्मला पुतुल की कविताओं के माध्यम से आदिवासी कविता बाहरी पाठकों को आकर्षित करती है। हिन्दी में उनके तीन संग्रह प्रकाशित हैं – अपने घर की तलाश में, नगाड़े की तरह बजते शब्द और बेघर सपने। सभी इक्कीसवी सदी के पहले दशक में प्रकाशित हुए। निर्मला पुतुल आज हिन्दी पाठकों के लिए जाना पहचाना नाम है। उनकी कविताएँ बड़े पैमाने पर अनूदित हुईं और विभिन्न भाषा-साहित्यों के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनीं। वन्दना टेटे ने लगभग सभी विधाओं में लेखन किया। आदिवासी साहित्य की सैद्धान्तिकी निर्माण की प्रक्रिया में भी वे लगातार सक्रिय हैं। उनका हाल ही में प्रकाशित कविता संग्रह कोनजोगा आदिवासी टोन और आदिवासियत लिए हुए है। हरिराम मीणा भी आदिवासी कविता के क्षेत्र में लगभग दो दशक से सक्रिय हैं। उनके कई संग्रह प्रकाशित हैं – रोया नहीं था यक्ष, हाँ चाँद मेरा है, सुबह के इन्तजार में आदि।

केदारनाथ अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित युवा कवि अनुज लुगुन ने भी आदिवासी कविता के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई है। उनका अभी तक कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ, लेकिन आदिवासी साहित्य में रुचि लेने वाले पाठकों के लिए अनुज लुगुन एक जाना-पहचाना नाम है। मराठी आदिवासी साहित्य के वरिष्ठ कवि वाहरू सोनवणे का हिंदी कविता संग्रह पहाड़ हिलने लगा है हिन्दी पाठकों के बीच पर्याप्त लोकप्रिय है। संग्रह की स्टेज कविता अक्सर गोष्ठियों में उद्धृत की जाती है। रोज केरकेट्टा की कविताएँ खडिया के साथ हिन्दी में भी आई हैं। महादेव टोप्पो के भी कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुए, लेकिन उनकी कविताएँ आदिवासी दर्शन की लगातार अभिव्यक्ति कर रही हैं। इनके अलावा सावित्री बड़ाइक, धनेश्वर माँझी, ग्लैडसन डुंगडुंग, ग्रेस कुजूर, दमयन्ती किस्कू, सरिता बड़ाइक आदि आदिवासी कविता के क्षेत्र में सक्रिय हैं।[11]

आदिवासी कहानियों की परम्परा

पुरखा साहित्य में कई कहानियाँ मिलती हैं, लेकिन समकालीन आदिवासी कहानी का इतिहास भी अब आधी सदी पूरी कर रहा है। पहली आदिवासी कहानीकार एलिस एक्का बीसवीं सदी के छठे-सातवें दशक में सक्रिय थीं। उनकी कहानियों को वन्दना टेटे ने संकलित कर पुनः प्रकाशित कराया। आठवें दशक में रामदयाल मुण्डा कविता के अलावा कहानी लेखन के क्षेत्र में भी सक्रिय थे। पीटर पॉल एक्का लम्बे समय से आदिवासी कथा लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उनके कहानी संग्रह राजकुमारों के देश में और परती जमीन आदिवासी साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचनाओं में शामिल हैं। रोज केरकेट्टा का पगहा जोरी जोरी रे घाटो हिन्दी पाठकों के बीच काफी चर्चित है। वाल्टर भेंगरा 'तरुण' का संग्रह जंगल की ललकार सन् 1989 में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा उनके और कई संग्रह हैं – लौटती रेखाएँ, देने का सुख आदि उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। आदिवासियत को आधार बनाकर वन्दना टेटे ने हाल ही में एक कहानी संग्रह सम्पादित किया है – आदिवासी कथा जंगल। यह संग्रह आदिवासी जीवन दर्शन का जीवन्त दस्तावेज है। इनके अलावा कहानी लेखन के क्षेत्र में मंगल सिंह मुण्डा, रूपलाल बेदिया, सिकरादास तिर्की, शंकरलाल मीणा आदि भी सक्रिय हैं।

आदिवासी उपन्यास लेखन की परम्परा

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

आदिवासियों ने उपन्यास के क्षेत्र में भी अपनी उपस्थिति दर्ज की है। पीटर पौल एक्का और वाल्टर भेंगरा 'तरुण' सन् 1980-90 के दशक से लगातार लेखन कार्य कर रहे हैं। पीटर पॉल एक्का का पलाश के फूल, मौन घाटी और सोन पहाड़ी आदिवासी दर्शन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। वाल्टर भेंगरा के जंगल के गीत, लौटते हुए (सन् 2005), शाम की सुबह, तलाश आदि कई उपन्यास हैं। हरिराम मीणा का धूणी तपे तीर (सन् 2008) हालाँकि आदिवासी दर्शन की दृष्टि से कमजोर उपन्यास है, लेकिन हिन्दी पाठकों के बीच कई वजहों से लोकप्रिय हुआ है। मंगल सिंह मुण्डा का छैला सन्दु और अजय कण्डुलना का बड़े सपनों की उड़ान भी आदिवासी उपन्यासों की सूची में हैं।

अन्य विधाओं में लेखन की परम्परा

साहित्य की इन लोकप्रिय विधाओं के अलावा आदिवासी रचनाकार अन्य विधाओं में भी लिख रहे हैं। आदिवासी आन्दोलनों पर ग्लैडसन डुंगडुंग और सुनील मिंज की कई किताबें – नगड़ी का नगाड़ा, झारखण्ड में अस्मिता संघर्ष आदि हैं। हरिराम मीणा ने जंगल जंगल जलियाँवाला और साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक शीर्षक से आदिवासी जीवन से सम्बन्धित यात्रा संस्मरण लिखे हैं। वन्दना टेटे की पुरखा लड़ाके, आदिवासी साहित्य: परम्परा और प्रयोजन, वाचिकता, आदिवासी दर्शन और साहित्य, पुरखा झारखण्डी साहित्यकार और नए साक्षात्कार आदि पुस्तकें आदिवासी दर्शन और साहित्य को समझने की दृष्टि से मील का पत्थर है।

आदिवासी साहित्य की परम्परा में विभिन्न विधाओं में विभाजित उपर्युक्त रचनाएँ तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, इसके साथ आदिवासी साहित्य की विचारधारा भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। आदिवासी साहित्य की अनिवार्य शर्त उसकी दार्शनिकता है। जिस तरह से डॉ. भीमराव अम्बेडकर का दर्शन दलित साहित्य का मूल है, उसी तरह आदिवासी साहित्य के विचार पुरुष जयपाल सिंह मुण्डा हैं। मूलतः छोटा नागपुर (झारखण्ड) के रहने वाले जयपाल सिंह ने ऑक्सफोर्ड से पढ़ाई की। ओलम्पिक में भारत के लिए पहला स्वर्ण पदक जीतने वाली हॉकी टीम के कप्तान जयपाल सिंह एक बेहतरीन खिलाड़ी थे। सन् 1938 में उन्होंने आदिवासियों को एकजुट करने के लिए आदिवासी महासभा गठित की। आदिवासी शीर्षक से पत्रिका प्रकाशित की। पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे। भारत की संविधान-निर्मात्री सभा के सदस्य बने। संविधान सभा की उपसमितियों में भागीदारी की। संविधान सभा में आदिवासी प्रतिनिधि के रूप में देश के आदिवासियों के मुद्दों को उठाया। आजादी के बाद भी आदिवासी मुद्दों पर सक्रिय रहे। आदिवासी दर्शन और साहित्य की कुछ बुनियादी विशेषताएँ हैं, जिन्हें बिन्दुवार इस प्रकार समझा जा सकता है –

- आदिवासी दर्शन रचाव और बचाव का दर्शन है।
- आदिवासी दर्शन व्यक्तिवाद का नकार और सामूहिकता का समर्थन करता है।
- आदिवासी दर्शन मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ मानने के दावे से सहमत नहीं है। इसके अनुसार दुनिया के सभी प्राणी, उससे भी आगे सारी प्रकृति को बचाना जरूरी है।
- आदिवासी दर्शन के अनुसार सभी कलाएँ एक-दूसरे से अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई हैं। कलाओं में साहित्य या कोई कला विशेष सर्वश्रेष्ठ नहीं है।
- आदिवासी दर्शन में प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव है।
- आदिवासी दर्शन के अनुसार प्रकृति की बनाई हर चीज सुन्दर है, कुछ भी असुन्दर नहीं है।
- आदिवासी दर्शन 'मैं' की जगह 'हम' के भाव का समर्थक है। इसलिए यहाँ आत्मकथा लेखन की परम्परा नहीं है।
- आदिवासी दर्शन में आक्रोश नहीं, सहजीवन पर जोर दिया गया है।
- आदिवासी दर्शन के अनुसार आदिवासियों के उत्थान के लिए आर्थिक के साथ सांस्कृतिक सवाल भी जरूरी है।
- आदिवासी दर्शन पूँजीवादी अर्थतन्त्र का विरोध करता है।
- आदिवासी दर्शन प्रकृति को संसाधन नहीं, पूर्वज मानता है। जल, जंगल, जमीन और उससे जुड़ी हर चीज को बचाने के लिए वह वचनबद्ध है।
- आदिवासी साहित्य हिन्दू मिथकों के डीकोडीकरण का कार्य कर रहा है। हिन्दू मिथकों में वर्णित आदिवासियों के खलनायकत्व की छवि पर यह सवाल उठाता है।
- आदिवासी साहित्य आदिवासी आन्दोलनों की परम्परा और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में आदिवासियों की भागीदारी से जुड़ी कहानियों को सामने लाता है और बताता है कि किस प्रकार आदिवासी आन्दोलन साम्राज्यवाद के साथ सामन्तवाद से भी लड़ने के कारण ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे।
- इसके साथ ही आदिवासी साहित्य की पंरपरा संस्कृतिकरण और आदिवासी समाज पर इसके कुप्रभावों के प्रति सचेत है।
- आदिवासी साहित्य आदिवासी स्वायत्तता और स्वशासन के सवाल को पुरजोर तरीके से उठाता है।
- इन सबके साथ आदिवासी साहित्य वर्तमान में आदिवासियों के समक्ष उपस्थित समस्याओं से भी रूबरू कराता है, जैसे, विस्थापन की समस्या, आर्थिक शोषण की समस्या, बाहरी दखल से उत्पन्न समस्याएँ, आदिवासी स्त्रियों के सवाल आदि।
- आदिवासी साहित्य भाषाओं और संस्कृतियों को बचाने के लिए वचनबद्ध है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 6, November 2021 |

IV. निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज और साहित्य के प्रति सही नजरिया विकसित करना जरूरी है, तभी हम आदिवासी साहित्य की सही परम्परा को पहचान पाएँगे। आदिवासी साहित्य की परम्परा को सही सन्दर्भों में व्याख्यायित करने की जरूरत है। यह स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य का सहगामी है, लेकिन कई मसलों में उनसे इसका पार्थक्य भी है। आदिवासी साहित्य और इसकी परम्परा सृष्टि को बचाने के लिए सबसे सशक्त माध्यम हो सकते हैं, इसलिए इनसे संवाद बहुत जरूरी है।[11]

संदर्भ

1. आदिवासी विद्रोह : विद्रोह परम्परा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएं, केदार प्रसाद मीणा अनुज्ञा प्रकाशन, दिल्ली
2. झारखण्ड के आदिवासी, डॉ. चन्द्रकान्त वर्मा के.के पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद
3. वन अधिकार अधिनियम: समीक्षा और संघर्ष, डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, सहयोग पुस्तक कुटीर (ट्रस्ट), निजामुद्दीन, नयी दिल्ली
4. राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, डॉ. बृजकिशोर शर्मा, राजस्थान
5. आदिवासी अस्मिता:प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनुज लुगुन(सम्पादक), अन्यय प्रकाशन, दिल्ली
6. Tribal Life In India, Nirmal Kumar Bose, NBT, INDIA, New Delhi
7. https://www.youtube.com/watch?v=rjbrJlVjk-E
8. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%86%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A5%80_%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF
9. http://rsaudr.org/show_artical.php?&id=3031
10. http://www.srijangatha.com/SheshVishesh1_27May2011#.Vqm-cZp95iw
11. http://www.debateonline.in/200612/